राजर्षि शाहूजी महाराज

(26 June 1874 – 6 May 1922)

(कृपया इस नाटक का प्रिंट निकलवाकर पढ़ें और पढ़वाएं)

सुगत सांस्कृतिक शैक्षिक एवं सामाजिक संस्था,
लखनऊ,(उ.प्र.) – 26.06.2021
अभिनेत्री : अनामिका सिंह
लेखक : ए के सिंह
मोबा : 7355175480

बंधुओं : जय संविधान, जय विज्ञान, जय लोकतंत्र, जय भारत, नमो बुद्धाय, जय भीम, जय अर्जक...

....

वर्ण वर्चस्ववादी वर्ग ने युगों युगों से सताये गये बहुजन समाज को सामाजिक और धार्मिक दासता में धकेल दिया था। राजर्षि शाहूजी महाराज ने आजीवन इसके विरुद्ध संघर्ष किया। बहुजन समाज...विशेष तौर पर अछूत समाज के सबलीकरण हेतु उन्होंने शिक्षा का रास्ता खोलने का काम किया। उनके लड़के, लड़कियों के लिए छात्रावासों का निर्माण किया। उनके लिए शासन–प्रशासन में पचास प्रतिशत जगह आरक्षित करवायी। उन्होंने अस्पृश्यता–निर्मूलन का केवल सरकारी घोषणापत्र ही नहीं निकाला, अपितु निजी जीवन में भी उसका पालन किया। उन्होंने अछूतों को निजी सेवाओं में भी सम्मिलित किया। उन्हें माहून, ड्राइवर, पुलिस कर्मी और वकील बनाया। उनमें आत्मविश्वास और स्वाभिमान का बीज बोया। उन्होंने महिलाओं पर होने वाले अत्याचार के विरोध में कानून बनाए। अंतरजातीय विवाह, विधवा विवाह, तलाक आदि के संदर्भ में क्रांतिकारी सुधार लागू किये।

महामना ज्योतिबा फुले हों या सावित्री बाई फुले या फातिमा शेख....इन सभी ने भेदभाव के विरुद्ध एक सशक्त विकल्प खड़ा करने का जो बीड़ा उठाया था और इस हेतु जन–जागृति आंदोलन की जो मशाल प्रज्ज्वलित की थी, शाहू जी ने इसको गति प्रदान की। आगे चलकर ये आंदोलन बाबासाहेब आंबेडकर के कुशल एवं दूरदर्शी नेतृत्व में सफलता के उच्चतम शिखर को प्राप्त हुआ।

आधुनिक भारत में कोल्हापूर रियासत का नाम बहुत ही महत्वपूर्ण हैं छत्रपति शिवाजी महाराज ने जिस राज परम्परा की नींव डाली थी, कोल्हापुर रियासत उसी का एक हिस्सा है। सत्रहवीं शताब्दी में छत्रपति शिवाजी महाराज ने मराठी राजसत्ता की नींव रखी और शाहूजी महाराज ने उसको एक नया आयाम दिया। राजसत्ता की स्थापना के बाद कई प्रकार के उतार–चढ़ाव आए। राजसत्ता पर अपना–अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए या उसे बनाए रखने के लिए घिनौने हथकंडे भी अपनाए जाते रहे। मराठों के आपसी टकराव का समय–समय पर पूरा लाभ लेने का प्रयास पूना के पेशवा करते रहे।

अन्ततः पेशवाओं ने राजसत्ता की स्थापना कर, आने वाली सदियों तक, पेशवाई सत्ता अक्षुण्ण बनाये रखने का ऐतिहासिक कार्य किया। जिसके चलते समूचे राज्य में भेदभाव, ऊँचनीच, छुआछूत, अनाचार, अत्याचार और अमानवीयता का साम्राज्य स्थापित हुआ। उस समय मराठी राजसत्ता का केन्द्र कोल्हापुर या सातारा के स्थान पर पूना शहर बन गया था। कोल्हापुर रियासत के राजसिंहासन पर छत्रपति शाहूजी का आसीन होना एक नये युग का प्रारंभ था।

छत्रपति शिवाजी महाराज को भी अपने राज्याभिषेक के लिए काशी के पुरोहित को तुलादान देकर बुलाना पड़ा था। तुलादान मतलब पुरोहित के वनज के बराबर

सोना, चाँदी, रुपया पैसा, हिरे जवाहारात वगैरहा देना। क्योंकि मराठी और दक्षिण भारत के पुरोहित जिनके हाथों में धर्मसत्ता थी, वे शिवाजी को क्षत्रिय मानने के लिए कतई तैयार नहीं थे। इसीलिए उन्होंने शिवाजी महाराज का राज्याभिषेक करने मना कर दिया था। छत्रपति शिवाजी के समय में महाराष्ट्र और दक्षिण भारत में बौद्ध धम्म का अस्तित्व लुप्त हो गया था, जैन धर्मी लोग प्रभावहीन थे।

उन्नीसवीं शताब्दी में कोल्हापुर रियासत में एक महत्वपूर्ण घटना घटी। बम्बई की अंग्रेज सरकार द्वारा 9 जून 1871 को महादेव वासुदेव बर्वे, जो कि पुरोहित थे, उनकी प्रशासक के रुप में कोल्हापुर में नियुक्ति कर दी गई। उसने अपनी एक सोची–समझी साजिश के तहत चौथे शिवाजी राजा को उसके जन्मदाता माता–पिता से दूर करने की योजना बनाई। क्योंकि अभी तक राज्य में चौथे शिवाजी का राज्यारोहण नहीं हुआ था। वे अभी छात्र ही थे। लेकिन शाहूजी के पिता आबासाहेब घाटगे को यह बात मंजूर नहीं थी। वे सभी अपने–अपने तरीके से दरबार की सत्ता पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयास करने लगे। कोर्ट–कचहरियाँ भी हुई, और मार्च 1882 में आबासाहेब घाटगे कोल्हापुर रियासत के राजप्रतिनिधि के रुप में नियुक्त हुए। कोल्हापुर रियासत की सारी सत्ता अब आबासाहेब घाटगे के हाथ में आ गई थी। इन्हीं आबासाहेब घाटगे के परिवार में 26 जुलाई 1874 को कोल्हापुर के राजमहल में यशवंतराव का जन्म हुआ। उस समय कोल्हापुर रियासत में विधवा रानियों का ही प्राबल्य था। चौथे शिवाजी राजा से महारानी आनंदीबाई को कोई भी संतान नही हुई थी। इसलिए उन्होंने यशवंतराव को ही दत्तक (गोद) लेने का निर्णय लिया। उस समय यशवंतराव लगभग दस वर्ष के थे। महारानी आनंदीबाई और राजघराने की अन्य महिलाओं ने यशवंतराव के हाथ पर शक्कर रखकर, उनका नया नाम ' छत्रपति शाहूजी' रखा। आगे

चलकर यही शाहूजी राजा छत्रपति शाहूजी महाराज के नाम से विख्यात हुए। उस समय यह कोई नहीं जानता था कि कोल्हापुर की राजगद्दी पर शाहूजी का विराजमान होना, केवल कोल्हापुर रियासत के लिए ही नहीं, बल्कि समूचे भारत वर्ष के लिए एक क्रान्तिकारी घटना साबित होगी। कोल्हापुर नगरपालिका ने उन्हें सम्मानपत्र प्रदान किया।

अंग्रेज राजनैतिज्ञ कर्नल एच.ए.रीब्ज ने घोषणा की कि, ''शाहूजी का दत्तकविधान हो गया है और वे राजा हो गए हैं।'' रीब्ज ने शाहूजी को पढ़ाई के लिए लन्दन भेजने की भी योजना बनाई थी, लेकिन बाद में यह तय किया गया कि शाहूजी को भारत में ही लन्दन जैसी शिक्षा दी जाए। इस हेतु शाहूजी को राजकोट के राजकुमार महाविद्यालय में दाखिल कराया गया और उनको आधुनिक शिक्षा की तालिम देने की बढ़िया व्यवस्था की गई। इस तरह शाहूजी महाराज ने परंपरागत शिक्षा–दीक्षा ग्रहण करने के स्थान पर आधुनिक शिक्षा पद्धति से अध्ययन प्रारंभ कर दिया। इस सच्चाई को झुठलाया नहीं जा सकता, कि आधुनिक शिक्षा से उन्हें एक नई दृष्टी प्राप्त हुई, जिसने उन्हें व्यावहारिक ज्ञान के साथ–साथ राज्य के आधुनिक दृष्टीकोण से, विकास की ओर उन्मुख किया।

राजकोट के राजकुमार महाविद्यालय में जब शाहूजी का दाखिला हुआ, उस समय वे बहुत छोटे थे। शाहूजी को वहाँ पाँचवी कक्षा में दाखिला मिला था। शाहूजी जब तीन साल के ही थे, तब उनकी माताश्री का देहान्त हो गया था और बारह साल की उम्र में उनके सिर से पिता का साया भी उठ गया था। उन्होंने अपने बचपन में ही पारिवारिक दुःखों को बहुत करीब से देखा और अनुभव किया था। इसलिए उनके मन में अनाथ, गरीब, बेसहारा बच्चों के प्रति बेहद लगाव और हमदर्दी थी। क्योंकि इस प्रकार की दिक्कतों को सामना कर रहे थे। राजकोट के

राजकुमार महाविद्यालय शाहूजी पढाई से संतुष्ट नहीं थे। अतः उन्होंने राजकोट छोड़ दिया।

उसके बाद शाहूजी की पढाई के लिए स्टूअर्ट मिटफोर्ड फ्रेजर नाम के एक यूरोपियन अधिकारी की नियुक्ति की गई। फ्रेजर आई.सी.एस. की परीक्षा उत्तीर्ण थे और नासिक के सहायक जिलाधिकारी भी रह चुके थे। उनके ही मार्गदर्शन में 11 जून 1889 को धारवाड़ में शाहूजी की पढ़ाई प्रारंभ हुई।

शाहूजी जी धारवाड़ में पढ़ाई कर रहे थे, उसी समय उन्होंने अपने अध्यापक फ्रेजर और कुछ अन्य छात्रों के साथ उत्तर–पूर्व भारत की यात्रा शुरु की। शाहूजी ज्योतिषियों और ग्रहों के कौल पर कभी भरोसा नहीं करते थे। इसलिए वे अपनी यात्रा का प्रारंभ ज्योतिषियों के कहने पर नहीं करते थे। यात्रा के दौरान वे नासिक, मथुरा, बनारस और इलाहाबाद गए। नासिक के मंदिरों के पुरोहितों ने दक्षिणा के लिए शाहूजी महाराज को चारों ओर से घेर लिया। पुरोहित अपने साथ यात्रियों की वंशावली का बही खाता भी लाये थे और वे उसमें दस्तखत करने के लिए शाहूजी से आग्रह कर रहे थे। लेकिन शाहूजी ने उसमें दस्तखत करने से साफ इंकार कर दिया था। उस समय उनकी आयु 16 वर्ष ही थी। लेकिन धर्म के नाम पर पुरोहितों की धोखाधड़ी से वे अच्छी तरह परिचित थे। शाहूजी के दस्तखत लेने का अधिकार किसको है, इस बात पर दो पुरोहित आपस में ही बुरी की तरह झगड़ रहे थे। दोनों कह रहे थे कि मैं ही शाहूजी का परंपरागत पुरोहित हूँ। शाहूजी ने उन दोनों पुरोहितों को जबरदस्त फटकार लगाकर भगा दिया। उसके बाद वे बनारस और इलाहाबाद पहुँचे। उन्होंने वहाँ भी यही नज़ारा देखा। उन्होंने बनारस के मणिकर्णिका घाट पर स्नान करने से साफ इंकार कर दिया था। शाहूजी का यह प्रथम भारत भ्रमण था। इसमें उन्होंने इस का बात का अच्छी तरह अनुभव किया था कि कैसे

धार्मिक स्थलों में, वहाँ के पुरोहित धर्म के नाम पर सामान्य जनता को, बहुत ही बुरी तरह अपने जाल में फँसाकर लूट रहे हैं। इस भारत भ्रमण से शाहूजी को बहुत कुछ सीखने को मिला।

सतरह वर्ष की आयु में उनका विवाह बड़ौदा रियासत के सरदार गुणाजीराव खानवीलकर की कन्या लक्ष्मीबाई के साथ बड़े धूमधाम से हुआ था। पत्नी लक्ष्मीबाई ने जनहितकारी कामों में शाहूजी का मनोबल बढ़ाने का हमेशा काम किया।

ब्रिटिश सरकार ने उनको श्रीलंका जाने की अनुमति भी दे दी थी। उस समय श्रीलंका पर अंग्रेजों का राज था। जिस समय शाहूजी वहाँ गये, उस समय श्रीलंका में अनागारिक धर्मपाल द्वारा बौद्ध पुनर्जागरण का आंदोलन चलाया जा रहा था। भारत में भी इसकी नींव पड़ चुकी थी। इस यात्रा से शाहूजी को बौद्ध धम्म की अच्छी जानकारी प्राप्त हुई।

रास्ते में सहयोगियों के साथ सांची रुके। सांची का अनुभव सबसे अनुठा और हृदस्पर्शी था। उनको सांची जैसा दृश्य न तो भारत में अन्य जगहों पर देखने को मिला और न श्रीलंका में। उनकी यहाँ न किसी पुरोहित से मुलाकात हुई और न किसी प्रकार के कर्मकाण्ड से। उन्होंने साँची में भगवान बुद्ध की अस्थियों पर बने स्तूप के सामने जितनी शांति महसूस की, उतनी शांति अन्य किसी और स्थान पर उन्हें नहीं मिली।

शाहूजी धारवाड़ में अपनी पढ़ाई समाप्त करने के बाद 1893 के जनवरी माह में धारवाड़ में कोल्हापुर लौट आए। उन्हें छात्र जीवन में फ्रेजर के विशेष मार्गदर्शन के साथ–साथ भारतीय अध्यापक के रुप में केशवराज गोखले का भी मार्गदर्शन प्राप्त हुआ था। गोखले उदारवादी ब्राह्मण थे और आर्य समाज से प्रेरित थे। धारवाड़

से आने के बाद शाहूजी ने राज्य में शिक्षा प्रसार की ओर ध्यान दिया। उन्होंने कोल्हापुर के राजाराम महाविद्यालय के शैक्षणिक कार्यों की ओर विशेष ध्यान देना शुरु किया। साथ ही सरकारी नौकरी के बजाय स्वतंत्र उद्योग–धंधे करने वाले छात्रों की बहुत प्रशंसा की। शाहूजी स्वयं अपने राज्य के गाँवों में और सरदारों के यहाँ गए। वे गरीबों, मजदूरों और किसानों के घर–परिवारों में जाकर उनके हाल–चाल पूछने वाले पहले मराठा राजा थे। शाहूजी द्वारा कोल्हापुर की राजसत्ता प्राप्त करने से पहले राज्य में बहुजन समाज के लोगों को सामाजिक और धार्मिक पाबंदियों की वजह से पढ़ने–लिखने का अधिकार नहीं था। शाहूजी ने डेक्कन एज्युकेशन सोसायटी की स्थापना की। वे ही उसके संस्थापक अध्यक्ष थे। सन् 1854 में सभी भारतीयों के लिये शिक्षा के द्वार खोल दिए गए। शाहूजी ने सरकारी नौकरीयों में समान हिस्सेदारी करने की नई नीति बनायी।

शाहूजी ने अपने राज्य के शासन–प्रशासन पर काबिज़ ब्राह्मण, पारसी और अंग्रेजों के एकाधिकार को समाप्त कर अछूतों और पिछड़े वर्गों के लोगों को शिक्षित कर उनको शासन–प्रशासन मे उच्च पदों पर नियुक्त करने का प्रयास शुरु किया। शाहूजी ने किसी भी विरोध की परवाह नहीं की। अछूतों और पिछड़े वर्गों के पढ़े–लिखे लोगों की शासन–प्रशासन में नियुक्तियाँ होने से प्रशासन में ब्राह्मणों की संख्या कम होने लगी। वे चाहते थे, कि सामान्य लोगों को अपने अधिकारों और कर्तव्यों की पूरी जानकारी हो, इसलिए वे शिक्षा के प्रचार पर जोर देते थे। वे स्वयं गाँव–देहातों में जाकर स्कूलों का निरीक्षण करते। शाहूजी उम्र से भले ही केवल बाईस साल के थे, लेकिन वह एक अनुभवी राजा थे।

1899 में प्लेग ने रियासत को अपनी चपेट में ले लिया। बारिश न होने से रियासत में सारी फसल चौपट हो गई थी। उन्होंने अपनी प्रजा को भगवान भरोसे

नहीं छोड़ा। वे प्लेग निवारण के लिए किसी पुरोहित और यज्ञ–जप–तप की शरण में नहीं गए। उन्होंने भास्करराव जाधव द्वारा प्लेग और अकाल पर नियंत्रण पाने का हर संभव पूरा प्रयास किया। उन्होंने पन्हाड़ा, कोल्हापुर के राजमहल में राजप्रतिनिधि के दफ़्तर में समान टेलीफोन की व्यवस्था की, जिसकी वजह से प्लेग के संबंध में पैदा होने वाली कठिनाइयों, शिकायतों को हल करने में बड़ी आसानी हुई। उन्होंने सस्ते दामों पर घास बेचने की व्यवस्था की। जिन जानवरों को उनके मालिक खिला–पिला नहीं सकते थे, उन जानवरों की भूख और प्यास को शांत करने की व्यवस्था की थी। उन्होंने किसानों से लगान वसूलना बंद कर दिया था। वे स्वयं अकाल पीड़ित इलाकों में गए, वहाँ के लोगों से मिले। उस समय के अख़बारों ने शाहूजी को एक लोकप्रिय, दयालु और सदहितकारी राजा की उपाधि से विभूषित किया था।

एक दिन शाहूजी पंचगंगा स्नान हेतु गए। उनके साथ उनके भाई बापूसाहेब घाटगे, मामा खानविलकर और अन्य कुछ लोग भी थे। मंत्रोच्चार के लिए उनके साथ नारायण नाम का पुरोहित व राजाराम शास्त्री नामक एक समाज सुधारक भी थे। पुरोहित नारायण पंडित कभी–कभी बिना स्नान किए मंत्र–पाठ कर पूजा करता–करवाता था। उस दिन भी उसने स्नान किए बगैर ही मंत्र आदि से पूजा–पाठ करना शुरु कर दिया। इस पर राजाराम शात्री का ध्यान गया। उन्होंने शाहूजी से पूछा कि आपका पुरोहित पुराणों के अनुसार मंत्रपाठ क्यों कर रहा है? पुरोहित ने जवाब दिया कि, 'शूद्रों को पुराणों के ही मंत्र बातए जाते हैं। पुराणों के मंत्र–पाठ करते समय स्नान करने की ज़रुरत नहीं है।' नारायण पुरोहित शाहूजी का नौकर था। एक नौकर इस तरह से जवाब देगा, शाहूजी ने कभी सोचा भी

नहीं था। इस भयंकर स्थिति में भी शाहूजी ने अपना संयम नहीं खोया और उस पुरोहित को पद से हटा दिया।

जाति अहंकार को समाप्त करने के लिए शाहूजी ने अछूतों और पिछड़े वर्गों को पढ़ने लिखने की प्रेरणा और सुविधाएं प्रदान की। शासन और प्रशासन में उन्हें महत्वपूर्ण स्थान दिया था। उन्होंने अछूतों और पिछड़े वर्गों में सामाजिक परिवर्तन के लिए शिक्षा को सबसे ज्यादा महत्व दिया। महामानव ज्योतिबा फूले ने 'सत्य शोधक समाज' के द्वारा पिछड़े वर्गों और दबे कुचले समाज वर्ग में परिवर्तन की चेतना जगाने का कार्य किया। शाहूजी सत्यशोधक समाज के कार्यों से बड़े प्रसन्न थे। उन्होंने गाँव–देहात के पिछड़े वर्गों के बच्चों के लिए कोल्हापुर में छात्रावास बनाने का निश्चय किया। प्रारंभ में उन्होंने कुछ छात्रों को अपने राजमहल में ही रहने के लिए जगह दी। शाहूजी को इस बात की भी अच्छी जानकारी थी, कि भोजनालयों में ब्राह्मण छात्रों के साथ बहुत बुरा बर्ताव किया जाता है। उन्होंने छात्रावासों को बड़ी उदारता से आर्थिक सहयोग भी किया। उन्होंने छात्रावासों के छात्रों को छात्रवृत्ति भी दी। शाहूजी द्वारा छात्रावास स्थापित करने के पीछे उनका उद्देश्य था कि इससे सामाजिक एकता आयेगी और जातिभेद की भावना कमज़ोर होगी। उसी प्रकार अपने समाज के उत्थान हेतु स्कूल और छात्रावास स्थापित करने वाले लोग भी तैयार होंगे।

शाहूजी ने इंग्लैड की यात्रा करने का फैसला कर लिया। सारा बहुजन समाज उनके पीछे दीवार की तरह खड़ा था, भले ही वह पढ़ा–लिखा, धूर्त और चालाक नहीं था। शाहूजी सातवें एडवर्ड के राज्यारोहण समारोह में सम्मिलित होने के लिए अपने पाँच सहयोगियों के साथ इंग्लैंड जा रहे थे। इंग्लैंड पहुँचने पर कैंब्रिज विश्वविद्यालय ने मुझे शिक्षा और सांस्कृतिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य के लिए

एल.एल.डी. की मानद उपाधि से सम्मानित किया। इस यात्रा का मेरे दिलो–दिमाग पर बहुत ही सकारात्मक प्रभाव पड़ा। यूरोप को देखकर मेरी सोच ही बदल गई। मेरे मन में पहले से ही पिछड़े वर्गों के उत्थान के लिये योजना चल रही थी, उसको ताकत मिली।

मैंने लंदन जाने से पहले कोल्हापुर रियासत की सारी जिम्मेदारी भास्कर‍राव जाधव के कंधों पर डाल दी थी। अछूतों और पिछड़े वर्गों के उत्थान के लिए 26 जुलाई 1902 को गजट प्रकाशित कर दिया। हमने निश्चय किया, कि पिछड़े वर्गों के उत्थान की हमारी जो नीति है उसके मुताबिक पिछडे वर्गों के लोगों को उच्च शिक्षा पाने के लिए प्रेरित करना चाहिए, इस वर्ग को सरकारी क्षेत्र में पहले से ज्यादा नौकरियाँ दी जानी चाहिए। घोषणापत्र के प्रकाशित होने की तारीख से सरकारी दफ़्तरों में रिक्त पदों में से 50 प्रतिशत पदों पर पिछड़े वर्गों के पढ़े–लिखे युवाओं की नियुक्ति की जानी चाहिए, यही मेरी इच्छा है।'' यह घोषणापत्र संपूर्ण भारतवर्ष के लिये क्रांतिकारी निर्णय साबित होगा। हमारे ऊपर जातिवाद फैलाने के गंभीर आरोप भी लगेंगे।

शाहूजी ने वेदोक्त विवाद से प्रमाणित हो गया कि रियासत का राजपुरोहित एक नौकर के अलावा कुछ नहीं है। थक हार कर पुरोहितों ने मेरे खिलाफ एक नया हथियार इस्तेमाल किया। समारोह के बाद मैं राज–परंपरा के मुताबिक पुराने राजमहल के पड़ोस में स्थित अंबाबाई मंदिर में दर्शन करने के लिए गया, तो कोल्हापुर के पुरोहितों ने एक नया झमेला खड़ा कर दिय कि मैंने ने सिंघूबंदी को तोड़ा है। कहने का मतलब यह है कि मैंने सागर पार यानि लन्दन की यात्रा की है, इसलिए मैं प्रायश्चित किए बिना देवी के मंदिर में नहीं जा सकता। बताओ ये कौन सी बात हुई....मैंने पुरोहितों के इस आग्रह को सिरे से नकार दिया। उस

समय कुछ सनातनी मराठे भी पुरोहितों का समर्थन कर रहे थे। लेकिन मैंने परवाह नहीं की। बताओ...सागर पार की यात्रा करना कोई पाप है..?

विदेश यात्रा से मैं बहुत प्रसन्न था, क्योंकि वहाँ मैं बहुत सारे नए विचारों से परिचित हुआ था। मैं कोल्हापुर रियासत को एक नया रुप देने के बारे में सोच रहा था। 14 सितम्बर 1902 को माँ (गोद) आनंदीबाई का देहान्त हो गया। राजमहल ही नहीं, समूची कोल्हापुर रियासत दुःख में डूबी थी। माँ ने नारी शिक्षा के लिए काफी धन ही खर्च नहीं किया था बल्कि कोल्हापुर में नारी जागृति की दिशा में बहुत ही सराहनीय कार्य भी किये थे। पुरोहितों ने कहा, कि ''माँ साहेब का दाह संस्कार वेदों के अनुसार उचित नहीं है। उस दिन पंचगंगा नदी के किनारे पर इकट्ठे हुए पुरोहितों ने नफरत भरे शब्दों में कहा 'शूद्र औरत का संस्कार वेदोक्त रीति के अनुसार कौन करेगा?' पुरोहितों के इन ज़हरीले शब्दों को सुनकर मुझे बहुत आघात लगा। यह समय कुछ कहने–करने का नहीं था। मैं चाहता था कि ''धर्मसत्ता से ऊपर एक ऐसी राजसत्ता हो, जो मानवतावाद की पक्षधर हो।''

मैं दिल्ली में आयोजित दरबार में भाग लेने के लिए दिल्ली गया, इसकी सूचना दिल्ली में अपने कर्मचारियों को पहले ही भेज दी थी, इसलिए आवास के लिए विशेष व्यवस्था हो गई थी। दिल्ली दरबार का मुख्य समारोह एक जनवरी 1903 को संपन्न हुआ। गवर्नर कर्जन द्वारा शाही दावत में मुझे ड्यूक ऑफ कनॉट ने जी.सी.व्ही.ओ. की उपाधि से सम्मानित किया था। मैं इस सम्मान को पाने वाला पहला राजा था। शाहूजी दिल्ली से लौटते समय बड़ौदा में रुक कर सयाजीराव गायकवाड़ से भी मिला था।

इसी बीच पता चला कि जो पुरोहित मेरा समर्थन कर मेरे अनुसार कार्य करते थे, मेरे विरोधी पुरोहितों ने उनके नल से पानी भरने पर प्रतिबंध लगा दिया

था, उनके यहाँ अन्य संस्कारों में भी जाना बंद कर दिया था और वे उन्हें जाति से बहिष्कृत कर रहे थे। लेकिन मैंने किसी भी किमत पर धर्मसत्ता को राजसत्ता के ऊपर अंकुश बनाये रखने की इजाजत नहीं दी। और पुरोहितों की धर्मसत्ता को इस बात की भी इजाजत नहीं दी कि वे जो कहेंगे वही न्याय है।

मैंने कला के संवर्धन की दृष्टी से कोल्हापुर में 1883 में जो 'गायन समाज' नामक संस्था स्थापित की थी, उस संस्था को मैंने अपने राज्यारोहण के बाद छह हजार रुपयों का अनुदान दिया था और उसका संरक्षक भी था। मैंने सन् 1895 में अल्लादिया खाँ नाम के एक महान गायक को राज्याश्रय दिया था। नारायण श्रीपाद राजहंस के माध्यम से मराठी रंगमंच को बहुत बड़ा योगदान दिया। आगे चलकर इसी सहयोग के बलबूते पर मराठी रंगमंच ने, अपने नाटकों व लोक कलाओं के माध्यम से, लोक नृत्य के जरिए महाराष्ट्र में मराठी रंगमंच के क्षेत्र में काफी ख्याति अर्जित की। इसी प्रकार अछूत और पिछड़े वर्गों के लोगों में जो कलागुण थे, उनको भी बढ़ावा देने का काम किया। तमाशों में काम करने वाले लोगों को भी राज्याश्रय दिया। मैं सोचता था कि कला मनुष्य के जीवन का अभिन्न अंग है और उसकी रक्षा होनी चाहिए। मैं धार्मिक ज़रुर था किन्तु पुरोहितों का मानसिक गुलाम नहीं ।

ज़रुरतों को देखते हुए 'श्री शाहूजी स्पिनिंग एण्ड विव्हिंग मिल' का शिलान्यास समारोह को कोल्हापुर में 27 सितम्बर 1906 को किया। अपने राज्य में व्यापार और उद्योग का विकास हो, लोगों की आर्थिक संपन्नता बढ़े, काम करने वालों को काम मिले, वे दो जून रोटी के लिए किसी के आगे हाथ न फैलाएं और न रोटी के टुकड़ों के लिए किसी जमींदार के यहाँ ज़िन्दगी भर गुलामी में सड़ते रहें। इसीलिए सरकारी नौकरियों में अछूतो और पिछड़े वर्गों के पढ़े–लिखे और

लायक लोगों को आरक्षण देकर उनका आर्थिक विकास किया और शिक्षित करा कर उनको शासन और प्रशासन चलाने योग्य बनाया।

इंग्लैंड दौरे के दौरान, वहाँ बड़े—बड़े तालाब और नहरों को देखा। मेरे मन में भी यह विचार आया था कि क्यों न अपने राज्य की खेती की उपज बढाने के लिए तालाब और नहरों से जलापूर्ति की योजना अमल में लाया जाये। इस विशाल योजना के लिए सन् 1905 के नवम्बर माह में मुंबई सरकार से पत्र व्यवहार भी किया। रियासत का भौगोलिक सर्वेक्षण भी करवाया। विश्वेश्वरय्या मुंबई सरकार के पर्यवेक्षक इंजीनियर थे। इस योजना के माध्यम से रियासत की खेती योग्य भूमि का समुचित विकास किया। दरअसल बड़े—बड़े बांधों के बजाए छोटे—छोटे बांध बनाने, तालाबों में जलसंग्रह और राज्य में नहरों का जाल फैलाना मुझे ज्यादा परिणामी लगा।

अछूतों के बच्चों के लिए एक स्वतंत्र छात्रावास की स्थापना की गई। इसका नाम मुंबई के राज्यपाल की दिवंगत बेटी और अछूतों के प्रति हमदर्दी रखने वाली व्हायलेट क्लार्क के नाम पर रखा गया। छात्रावास के लिए कोल्हापुर में महार तालाब के पास की खुली जगह पर एक इमारत बनवाई और इसके लिए पच्चीस रुपये मासिक का अनुदान भी मंजूर किया। दर्जी समाज के छात्रों के लिए छात्रावास का निर्माण ''संत नामदेव छात्रावास'' के नाम से किया गया।

मुंबई में 1910 में सत्यशोधक समाज की पुनर्स्थापना हुई। उसके बाद मेरे मन में विचार आया, कि 'यदि वास्तव में कुछ करना है तो सत्यशोधक समाज को मजबूत किया जाए।' अतः कोल्हापुर में 11 जनवरी 1911 को परसराम घोसखाडकर की अध्यक्षता में 'शाहूजी सत्यशोधक समाज' की स्थापना की गई और भास्करराव जाधव को इस समाज का अध्यक्ष बनाया गया। सत्यशोधक समाज को ज्ञान देने

के लिए धनगर समाज के विट्ठल विराजी डोणे की नियुक्ति की और उनको मासिक वेतन भी दरबार की ओर से दिया जाता था।

22 जून 1911 को लंदन में जॉर्ज पंचम का राज्यारोहण समारोह होने वाला था। लेकिन मैं उसमें जान बूझकर सम्मिलित नहीं हुआ, क्योंकि लंदन जाने पर बेहिसाब पैसा खर्च होता और जनकल्याण के कार्यों में रुकावट पैदा होती।

सत्यशोधक समाज को पूरा सहयोग देकर उनमें समाज परिवर्तन के कार्य के प्रति नई शक्ति प्रदान की। इसके लिए सत्यशोधक समाज के अंतर्गत जलसों की बैठकें करनी शुरु कीं। अब मैं अपने धार्मिक संस्कार पुरोहितों के बगैर ही करने लगा। मैंने अपनी धार्मिक–संस्कार विधि लागू की और उसी के अनुरुप स्वयं ही काम करना शुरु कर दिया। मराठों के धार्मिक संस्कार मराठा पुरोहित ही करने लगे। धीरे–धीरे वेदों के प्रति जो कुछ आस्था थी, वह भी अब टूटती जा रही थी। मेरे मन में ज्योतिबा फुले के सार्वजनिक सतधर्म और सत्यशोधक समाज के प्रति गहरी आस्था बढ़ रही थी।

सन् 1913 में कायस्थ प्रभू समाज के लोगों ने अपने समाज के छात्रों के लिए एक छात्रावास का निर्माण किया। मैंने पिछड़े वर्गों के लोगों में शिक्षा के प्रचार–प्रसार की ओर अपनत्व की भावना से विशेष ध्यान दिया। फिर भी पिछड़े वर्गों के लोगों ने शिक्षा के क्षेत्र में उतना विकास नहीं किया जितना मुझे करना चाहिए था, जिसका मुझे मलाल रहा। रिवर्तन लाने के लिये 28 मार्च 1913 को शिक्षा के संबंध में एक घोषणा–पत्र जारी किया। उस घोषणा–पत्र के अनुसार ‘‘पिछड़े वर्गों में प्राइमरी शिक्षा का प्रसार करने के लिए जो प्रयास जारी हैं, उसका आज तक संतोषजनक परिणाम दिखाई नहीं दिया। इस वर्ग की शिक्षा का विस्तार तेजी से हो, इस उद्देश्य सेयह निश्चय किया है कि हर गाँव और देहात में एक

पाठशाला स्थापित करके जिस समाज के लोग उस गाँव में बहुसंख्यक होंगे, उनमें से कोई एक व्यक्ति पाठशाला चलाए।'' इस काम के लिए अध्यापक को वंश परम्परा के आधार पर जमीन देने का निश्चय किया। कोल्हापुर में जुलाई 1913 से सत्यशोधक पाठशालाएं स्थापित करने की मुहिम शुरु की। उसकी जिम्मेदारी धनगर (चरवाह) समाज के एक नेता विठ्ठलराव डोणे और हरिभाऊ चव्हाण को सौंपी गई। हरिभाऊ चव्हाण ने भास्करराव जाधव के सहयोग से 'घरचा पुरोहित' (घर का पुरोहित) नाम की एक किताब लिखी। इस किताब में बहुजन समाज के घरों में किए जाने वाली धार्मिक पूजा विधि के कई प्रकारों के बारे में जानकारी दी गई थी। इस पाठशाला में आनेवाले छात्र बहुजन समाज के ही होते थे। बड़ौदा के सत्यशोधक कार्यकर्ता अपने घरों में पूजा आदि धार्मिक संस्कार इन सत्यशोधक पुरोहितों (शिक्षकों) से ही कराते थे। राज्य के कई इलाकों के बहुजन समाज के छात्रों ने इस सत्यशोधक पाठशाला में प्रवेश लिया था। इस पुरोहितवाद का एक नया विकल्प कारगर साबित हुआ।

बहुजन पुरोहितों का महत्व इतना बढ़ गया था कि उन्होंने सन् 1913 में कोल्हापुर में ही 1513 धार्मिक संस्कार संपन्न किए। उनमें से 226 विवाह संस्कार थे। बहुजन पुरोहित आंदोलन के खिलाफ वेदोक्त पुरोहितों ने कोर्ट की शरण ली थी। न्यायाधीश चार्ल्स सार्जेन्ट और न्यायमूर्ति तेलंग ने 8 जनवरी 1890 को पुरोहितों के जन्मजात पुरोहिती अधिकार को नकार दिया। इस मामले में सत्यशोधक समाज की विजय हुई। कोल्हापुर रियासत में बहुजनों के धार्मिक और विवाह संस्कार बगैर पुरोहितों के ही बड़े धूमधाम के साथ होने लगे।

मार्च 1917 में सामान्य लोगों के कल्याण की दृष्टी से सरकारी काम में सामान्य लोगों की हिस्सेदारी बढ़ाने की दृष्टी से मोड़ी लिपि को सरकारी पत्र

व्यवहार में इस्तेमाल न करने का निर्णय लिया गया। राज्य के इस निर्णय से अछूतों और पिछड़े वर्गों का पटवारी (कुलकर्णी) की लूट—सखोट से मुक्त हो गए। सरकारी काम—काज और पत्र—व्यवहार में मोड़ी लिपि का इस्तेमाल बंद कर देने की वजह से विशेषाधिकार प्राप्त पुरोहित वर्ग के मन में मेरे प्रति नफ़रत की भावना और भी बढ़ गई। इसके बावजूद बहुजनों के हितों के कार्यक्रम जारी रहे।

शिक्षित होने की वजह से मेरी यह मान्यता थी कि आम आदमी का उत्थान शिक्षा के प्रसार से ही हो सकता है। पाँच सौ से एक हजार आबादी वाले गाँव में पाठशालाएं शुरु कीं गयी। अध्यापकों के लिए एक प्रशिक्षण स्कूल शुरु करने की योजना बनाई। रियासत की नौकरी में पच्चीस साल से नीचे की उम्र वाले युवा लोगों को इन स्कूलों में पढ़ाने का निश्चय जन सामान्य के प्रति अपने उत्तरदायित्व की प्रेरणा से मिला। देव, धर्म के नाम पर मंदिरों में चढ़ावे के रुप में प्राप्त धन का सदुपयोग करने का निश्चय किया। कोल्हापुर रियासत के मंदिरों को सरकार की ओर से हर साल अन्नदान किया जाता था। मंदिरों को भूमि सरकार ने ही दी थी, फिर जिनके नियंत्रण में मंदिर थे, वे लोग मंदिर की जायदाद और आमदनी को अपनी निजी संपत्ति मानकर उसका उपयोग करते थे। मंदिरों की आमदानी को जनकल्याण के लिए प्रयोक करने का निर्णय लिया गया। इस आदेश से मंदिरों से हर वर्ष होने वाली 20 हजार रुपये की आमदानी का उपयोग अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा प्रसार और आम आदमी के अज्ञान को नष्ट करने के लिए किया जाने लगा।

इसी दरम्यान मेरा ध्यान विधवा महिलाओं की समस्याओं की ओर गया। धर्म शास्त्रों के अनुसार विधवाओं को पुनर्विवाह का अधिकार नहीं था। विधवा महिलाओं का जीवन तो नर्क से भी बद्तर था। उन्हें पुनर्विवाह का अधिकार नहीं था। मैंने ने जुलाई 1917 में विधवाओं के पुनर्विवाह के अधिकार को स्वीकार कर लिया। इस

विधयेक का नाम 'रिमैरिज रजिस्ट्रेशन लॉ' रखा गया। इससे विधवा महिलाओं का पुनर्विवाह कर मानवीय जीवन जीने का अधिकार मिला।

मैं तो छात्र जीवन से ही जातिभेद का विरोधी रहा हूँ...और अंर्तविवाह का समर्थक। जाति के बाहर विवाह भी होने चाहिए अन्यथा मुट्ठीभर लोगों के हाथों में सत्ता आ जायेगी। इसके लिए मैंने 12 जुलाई 1919 को रियासत में अंतरजातिय विवाह नियम लागू किया। इससे कम से कम अछूत और पिछड़े वर्गों के लोग आपस में विवाह संबंध स्थापित करेंगे, ऐसी मेरी संकल्पना है।

भारत में जातिभेद की समाप्ति हेतु जापान के सामुराई समाज का आदर्श स्वीकार करने में मुझे कोई हिचक नहीं हुई। लॉर्ड विलिंग्टन को लिखे पत्र में मैंने स्पष्ट रुप से कहा था कि, ''अछूतों से लेकर पिछड़े वर्गों तक सभी को स्वतंत्र निर्वाचन संघ दिए जाने चाहिए, यही मेरी राय है और विशेष रुप से अछूतों को तो मिलना ही चाहिए। इससे पहले मैंने उनके लिए किया ही क्या है, इस बात को आप लोग अच्छी तरह जानते हैं।

कोल्हापुर में आर्य समाज की स्थापना 1918 में करवाई। अपनी रियासत में आर्य समाज को हर तरह का सहयोग भी दिया। लेकिन आर्य समाज न तो अछूत और पिछड़े वर्गों में अपना स्थान बना सका और पुरोंहितवाद और उसके अहंकार को नष्ट करने में कारगर सिद्ध हो सका। इसलिए मैंने आर्यसमाज के माध्यम से जो सपना देखा था, वह पूरा नहीं हो सका।

22 फरवरी 1918 को एक सरकार आदेश के द्वारा गाँव मजदूरों को गुलाम या बंधुआ रखने के बजाय पैसे लेकर काम करने वाले मजदूर का दर्जा दिया। 27 जुलाई 1918 को सरकारी आदेश के द्वारा महार, मातंग, रामोशी, बेरड आदि जातियों

को दासता से मुक्त कराया। अब उनको हर दिन पुलिस स्टेशन में जाकर हाजिरी लगाने की ज़रुरत नहीं थी। दो सरकारी आदेशों से अछूतों को प्राथमिकता देकर, राजदरबार में सभी पदों पर नियुक्त करने को कहा। अपने आदेश के जरिये जो ज़मीन महारों को इनाम में दी गई थी उस जमीन को उन्हीं के नाम कर दिया गया। इससे रियासत में जो क्रांति आयी, वह संपूर्ण भारत में बेमिसाल थी।

एक बार गंगाराम कांबले नाम के एक अछूत नौकर ने मराठों के कुँए से पानी निकाल लिया। इस पर मराठों ने उसकी कोड़े से बेदर्दी से पिटाई की और चोरी का इल्जाम लगाया। गंगाराम ने मेरे पास आकर पूरी बात बतायी और पीठ के ज़ख़्म दिखाये। मैंने उस मराठा को बुलाकर उसकी पीठ कोड़े से लाल करवा दी और गंगाराम को पंसद का धंधा करने के लिए आर्थिक मदद भी की। उसने कोल्हापुर में अल्पाहारगृह शुरु किया। सवर्णों ने गंगाराम की जाति का पता लगने पर मेरे के पास शिकायत की। मैं अपने कार्यकर्ताओं के साथ गंगाराम के अल्पाहारगृह में कभी–कभी चाय पीने जाने लगा। देखा–देखी अन्य लोगों ने जाना शुरु कर दिया और देखते ही देखते उसका होटल चल पडा।

फरवरी 1919 में इसी समय उत्तर प्रदेश के कुर्मी समाज के नेता शिवप्रसाद और त्रिलोकचंद कटियार ने समाज की वार्षिक परिषद की अध्यक्षता करने के लिए मुझसे विनती की, और मैंने उसको स्वीकार करते हुए, कानपुर में 19 अप्रैल 1919 को कुर्मी समाज की परिषद की अध्यक्षता की। मैंने अपने अध्यक्षीय व्याख्यान में कहा था कि, ''मैं आप लोगों में से ही एक हूँ। आप मुझे एक मजदूर किसान भी मान सकते हैं। मेरे पूर्वज भी यही काम करते थे, उसी काम करनेवाले ने मुझे अध्यक्ष होने के लिए यहाँ बुलाया, इसकी मुझे बड़ी खुशी हुई है। आप लोग अपने बच्चों को पढ़ाइये, बेसहारा और गरीब भाईयों की मदद कीजिए। परदा प्रथा दूर

करके विधवा विवाह को बढ़ावा दे। अंतरजातीय भोज और अंतरजातीय विवाह द्वारा ही भारतीयों का उत्थान संभव है।

6 सितम्बर 1919 को एक घोषणापत्र जारी कर अपनी रियासत के सभी सार्वजनिक स्थल, सरकारी स्कूल अछूतों के लिए खोल दिए। मेरे आर्थिक सहयोग से ही डॉ. आंबेडकर 'मूकनायक' साप्ताहिक का प्रकाशन कर सके। माणगांव में दक्खन अछूत समाज की 22 मार्च 1920 को जो परिषद हुई, उसकी अध्यक्षता डॉ. आंबेडकर ने की थी और शाहूजी विशेष अतिथि थे। शाहूजी ने अपने भाषण में कहा था कि, ''डॉ. आंबेडकर तो विद्वानों में एक अलंकार हैं। वे आप लोगों के उत्थान के खातिर ही अन्य किसी समाज में नहीं गए। इसलिए आप लोगों को उन्हें धन्यवाद देना चाहिए, मैं भी उन्हें धन्यवाद देता हूँ। आप लोगों ने अपने नेता को खोज निकाला है, इसलिए मैं आप लोगों को भी धन्यवाद देता हूँ। मुझे विश्वास है कि डॉ.आंबेडकर ही आप लोगों का कल्याण करेंगे। एक समय ऐसा भी आयेगा जब कि, वे सारे भारत के नेता होंगे....'' शाहूजी की भविष्यवाणी आगे चलकर सच साबित हुई।

माणगांव की परिषद में शाहूजी ने संघर्ष की मशाल को डॉ. आंबेडकर के हवाले कर दिया था। डॉ.आंबेडकर 15 अप्रैल 1920 को शाहूजी ने नासिक में अछूत छात्रों के छात्रावास का शिलान्यास किया। नासिक की सभा में दिए भाषण की संपूर्ण भारत में प्रशंसा हुई और उनके भाषण का तमिल, तेलुगू तथा अंग्रेजी में अनुवाद भी हुआ। नागपुर, मद्रास, दिल्ली, बड़ौदा में सयाजीराव गायकवाड की पोती के विवाह सभारंभ में भारी व्यस्तता से वह काफी थक गए थे। वो दो दिन बड़ौदा में आराम करने के बाद मुंबई पहुँचे। डॉक्टरों ने उनकी स्वास्थ्य की जाँच की लेकिन शाहूजी अनुभव कर रहे थे कि अब उनकी जाने की बेला है। 6 मई

1922 को सुबह सूरज की पौ फटने से पहले ही 48 वर्षीय इस महान समाजोद्धारक लोकराजा ने अंतिम सांस ली। लेकिन उनकी इच्छा के मुताबिक उसमें पुरोहितों को नहीं बुलाया गया।

''हमें आपकी सेवाओं की सदा ही बड़ी आवश्यकता है क्योंकि आप उस महान् आंदोलन के स्तंभ हैं, जो सामाजिक लोकतंत्र के लिए भारत में अपना मार्ग प्रशस्त कर रहा है।''

– डॉ.बी.आर. आंबेडकर

अब आप लोग अपने–अपने कुर्सीयों से खड़े हो जायें और संविधान की प्रस्तावना को मेरे साथ–साथ दोहरायें।

हम भारत के लोग,
भारत को एक, प्रभुत्व संपन्न,
लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिये तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म, उपासना की स्वतंत्रता प्रतिष्ठा अवसर की समता प्राप्त करने के लिए तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता सुनिश्चित करने वाली बंधुता को बढ़ाने के लिए दृढ़ संकल्प होकर इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवम्बर 1949 ईसवी को एतद द्वारा इस संविधान को अंगीकृत अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।

(कृपया इसका प्रिंट निकलवाकर पढ़ें और पढ़वाएं)

-:समाप्त:-

सुगत सांस्कृतिक, शैक्षिक एवं सामाजिक संस्था,
लखनऊ (उ.प्र.)
अभिनेत्री : अनामिका सिंह
लेखक : ए. के. सिंह
7355175480